इकाई 16 राजनीतिक दायित्व और क्रांति

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 राजनीतिक दायित्व और क्रांतिः इन संपूरक (Complementary) शब्दों की अन्तर्सम्बद्धता

16.3 राजनीतिक दायित्व संबंधी अवधारणा की उत्पत्ति और प्रकृति

16.4 राजनीतिक दायित्व के लक्षण

- 16.4.1 राजकीय मामलों का प्रबंधन
- 16.4.2 राजनीतिक वैधता
- 16.4.3 प्राधिकार का प्रतिरोध

16.5 राजनीतिक दायित्व के विभिन्न सिद्धांत

- 16.5.1 दैवी सिद्धांतः आस्था में अनुमोदन
- 16.5.2 सहमति/संविदा सिद्धांतः लोकेच्छा (Will of the People) में अनुमोदन
- 16.5.3 निर्देशात्मक सिद्धांतः स्थापित परिपाटियों व परम्पराओं के सम्मान में अनुमोदन
- 16.5.4 आदर्शवादी सिद्धांतः मनुष्य की युक्तियुक्तता (Rationality) में अनुमोदन
- 16.5.5 मार्क्सवादी सिद्धांतः राजनीतिक दायित्व का सामाजिक दायित्व में अन्त्य (eventual) रूपान्तरण

16.6 राजनीतिक दायित्व का राजनीतिक मूल्यांकन

16.7 क्रांति : प्रकृति और निहितार्थ

16.8 क्रांति के लक्षण

- 16.8.1 एक प्रक्रिया का प्रारम्भ
- 16.8.2 एक परिवर्तन का द्योतन
- 16.8.3 एक संलयित (Coherent) कार्यक्रम का अर्थ प्रकटन
- 16.8.4 राजनीतिक नेतृत्व की कल्पित मर्यादा

16.9 क्रांति : एक घटनामात्र अथवा एक घटनाक्रम

16.10 क्रांति के विभिन्न सिद्धांत

- 16.10.1 उदारवादी सिद्धांत
- 16.10.2 मार्क्सवादी सिद्धांत
- 16.10.3 नव-उदारवादी सिद्धांत
- 16.10.4 आदर्शवादी उदारवादी सिद्धांत

16.11 नवीन सामाजिक विज्ञान साहित्य में क्रांति का सिद्धांतीकरण

- 16.11.1 तुलनात्मक दृष्टिकोण
- 16.11.2 मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण
- 16.11.3 समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण
- 16.11.4 राजनीतिक दृष्टिकोण
- 16.11.5 दार्शनिक दृष्टिकोण

16.12 क्रांति का मूल्यांकन

16.13 सारांश

16.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें
16.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि :

- राजनीतिक दायित्व एवं क्रांति की अवधारणा तथा उनके बीच अन्तर्सम्बद्धता को स्पष्ट कर सकें;
- राजनीतिक दायित्व एवं क्रांति की अवधारणा को स्पष्ट करने हेतु विकसित विभिन्न सिद्धांतों को बता सकें; तथा
- राज्य प्राधिकार के लिहाज से राजनीतिक दायित्व और क्रांति के लाभों व सीमाओं पर सूक्ष्म दृष्टि डाल सकें।

16.1 प्रस्तावना

एक राजनीति-वैज्ञानिक का चिन्तनीय विषय प्राधिकार के अध्ययन मात्र तक ही सीमित नहीं होता, बल्कि उन लोगों द्वारा सत्ता के स्वीकार्य होने की समस्या से भी संबद्ध होता है, जिन पर वह प्रयोग की जाती है। राजनीतिक दायित्व की अवधारणा संबंधी अध्ययन, सम्बद्ध शब्दों - राजनीतिक वैधता और क्रांति - के अन्वेषण की ओर आवश्यक रूप से प्रवृत्त करता है। यद्यपि राजनीतिक दायित्व की अवधारणा में राजनीति-दर्शन की खास कसौटी निहित है, इसको विधिसंगति और प्रभाविता की धारणाओं के साथ जोड़कर एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। इसके बाद हम क्रांति की धारणा संबंधी अध्ययन की ओर चलते हैं। इस इकाई में हम एक विधिसंगत राजनीतिक व्यवस्था और एक प्रबुद्ध नागरिकता के बीच संबंध पर सूक्ष्म दृष्टि डालने का विचार करते हैं, जो राजनीतिक दायित्व और क्रांति की अवधारणाओं को स्पष्ट करेगा।

16.2 राजनीतिक दायित्व और क्रांति : इन संपूरक (Complementary) शब्दों की अन्तर्सम्बद्धता

लोग राज्य का प्राधिकरण के रूप में आज्ञापालन क्यों करते हैं? किन परिस्थितियों में उनको अपनी अवज्ञा दर्ज करानी चाहिए? इन सवालों का जवाब अनेक विचारकों द्वारा भिन्न-भिन्न तरीकों से दिया गया है और उन्होंने इसका हल अर्थक्रियावादियों (Pragmatists) की सुस्पष्ट अभिपुष्टि हेतु मनुष्य के स्वाभाविक रूप से अच्छे स्वभाव में खोजा है। प्राधिकार और दायित्व के बीच संबंध अपृथक्य (inseparable) है, क्योंकि प्राधिकार के अनिवार्य लक्षणों में एक आज्ञापालन करवाने का अधिकार भी है। हम देखेंगे कि राज्य के प्रतिरोध हेतु भी क्या कोई अधिकार अथवा कर्त्तव्य है।

यह एक सुस्थापित तथ्य है कि लोग केवल एक विधिसंगत प्राधिकार का ही आज्ञापालन करते हैं; अन्यथा वे उसे उखाड़ फेंक सकते हैं। इस प्रकार सामने आता है क्रांति का प्रश्न, जो 1699 में हुई इंग्लैण्ड की गौरवपूर्ण क्रांति की भाँति एक शांतिपूर्ण घटना भी हो सकता है और 1789 की फ्रांसीसी क्रांति की भाँति एक हिंसक प्रदर्शन भी। क्रांति की धारणा संबंधी अध्ययन, इस प्रकार, समसामयिक राजनीति-सिद्धांत के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण विषय बन गया है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि राजनीति का वर्णन एक सत्ता हेतु संघर्ष के अध्ययन के रूप में किया जाता है, चाहे वह शांतिपूर्ण हो अथवा हिंसक साधनों से, जहाँ राजनीतिक दायित्व और क्रांति महत्त्वपूर्ण शाखा विस्तार रखते हैं।

16.3 राजनीतिक दायित्व-संबंधी अवधारणा की उत्पत्ति और प्रकृति

'दायित्व' शब्द अंग्रेज़ी के ऑब्लिगेशन (obligation) शब्द का अनुवाद है जो लैटिन शब्द 'ऑब्लिगेट' से निकला है, जिसका निहितार्थ है - ऐसी बात जो लोगों को वह काम करने के लिए बाध्य करती है जो उन्हें आदेश रूप में दिया जाता है। इसके विभिन्न संकेतार्थ हैं। नीतिशास्त्र के क्षेत्र में, यह व्यक्ति को उसके कर्त्तव्य बताता है, जो वह अपने बौद्धिक ज्ञान के आधार पर उन्हें स्वीकार करता है। न्यायशास्त्र के क्षेत्र में, लोगों का जीवन कानून द्वारा नियमित होता है। और राजनीति की दुनिया में, व्यक्ति किसी प्राधिकार के अधीन रहने व उसका आदेश पालन करने को बाध्य है। यह आम समझदारी की सूक्ति पर आधारित होता है। निष्कर्ष यह निकलता है कि राजनीतिक दायित्व का मामला प्राधिकार की प्रकृति से संबंधित मामलों पर निर्भर होता है, जो अपने पहलू में आमतौर पर अधिकारों, कानूनों, व राजनीतिक संगठन की पूरी दुनिया समोये रखता है।

16.4 राजनीतिक दायित्व के लक्षण

राजनीतिक दायित्व, इस प्रकार, एक फ्रेम है जिसके माध्यम से लोग ''प्राधिकृत व्यक्ति'' संबंधी भूमिकाओं के आदेशों को मानते हैं। ये हैं :

- राजकीय मामलों का प्रबंधन
- राजनीतिक वैधता
- प्राधिकार का प्रतिरोध

इन लक्षणों का अध्ययन हमें राजनीतिक दायित्व को और स्पष्ट रूप से समझने में मदद करेगा।

16.4.1 राजकीय मामलों का प्रबंधन

किसी भी सरकार को चलाने की कला कोई आसान नहीं है। यह एक दुष्कर एवं व्यापक कार्य है और किसी भी ग़लत अथवा त्रुटिपूर्ण नीति-निर्धारण के गंभीर परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं। इसके विपरीत जनता के लिए सरकार द्वारा लिया गया एक सकारात्मक और सही कदम किसी भी राष्ट्र के विकास हेतु अच्छे परिणाम लायेगा। इस प्रकार, यह हर अन्तर्विवेकशील व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि राजकीय मामलों, सरकारी नीतियों व राजनीतिक समस्याओं के प्रबंधन में गहरी रुचि ले। यह अन्योन्यक्रिया जन-कल्याण के लिए होगी। राजनीतिक दायित्व, इस प्रकार, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा व जनस्फूर्ति का आह्वान करता है, सरकार की ओर से भी और जनता की ओर से भी।

16.4.2 राजनीतिक वैधता

राजनीतिक दायित्व की अवधारणा संबंधी अध्ययन आवश्यक रूप से राजनीतिक वैधता और प्रभाविता से संबद्ध विषय के अन्वेषण की ओर प्रवृत्त करता है। किसी भी लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था की स्थिरता न सिर्फ़ आर्थिक विकास पर निर्भर करती है, बल्कि उसकी वैधता पर भी निर्भर करती है। वैधता में एक विश्वास को पैदा करने और कायम रखने की क्षमता शामिल होती है, वो यह कि विद्यमान राजनीतिक संस्थाएँ अथवा संगठन समाज के लिए सर्वाधिक उचित हैं, और इसको लोकेच्छा पर निर्भर कहा जाता है। प्रभाविता, दूसरी ओर, इस बात से जाँची जाती है कि कोई व्यवस्था सरकार के बुनियादी कामों को कितनी अच्छी तरह से करती है, यह जनसाधारण की प्रतिक्रिया से मापा जाता है।

16.4.3 प्राधिकार का प्रतिरोध

राजनीतिक दायित्व की धारणा न सिर्फ़ लोगों को प्राधिकार का आज्ञापालन बताती है, वरन् प्राधिकार प्रयोग के तरीके के बारे में उनसे छिद्रान्वेषण (crtical) की भी अपेक्षा करती है। प्रजा को अपने शासकों की कार्यवाही को बारीकी से जाँचना चाहिए और अपनी स्वतंत्रताओं पर हमले का विरोध करना चाहिए। इस प्रकार, राजनीतिक दायित्व की धारणा में प्राधिकार के प्रतिरोध की धारणा भी शामिल है। परन्तु वस्तुतः, राज्य के खिलाफ़ विरोध-प्रदर्शन शर्तिया समाज-कल्याण के किसी कथन पर आधारित होना चाहिए, जो जनसाधारण के लिए स्पष्ट हो और अवज्ञा के परिणाम राज्य-व्यवस्था पूरी तरह भंग हो जाने को प्रवृत्त न करें।

बोध प्रश्न 1

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलायें।

1) राजनीतिक दायित्व को परिभाषित करें। इसके विशिष्ट लक्षण क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

16.5 राजनीतिक दायित्व के विभिन्न सिद्धांत

राजनीतिक दायित्व विषयक अनेक सिद्धांत प्रतिपादित किए गए हैं। ये सिद्धांत राजनीतिक दायित्व संबंधी अवधारणा के पीछे हुए अनुमोदनों की श्रेणी को स्पष्ट करते हैं।

16.5.1 दैवी सिद्धांत : आस्था में अनुमोदन

यह सिद्धांत सबसे पुराने सिद्धांतों में से एक है, जो राज्य के प्रशासक के प्रति आज्ञापालन के कारण को स्पष्ट करता है। इसका निहितार्थ था कि शासक ने अपना प्राधिकार ईश्वर से सीधे प्राप्त किया है। अतः, प्रजा को एक दुष्ट शासक के खिलाफ भी विद्रोह करने का अधिकार नहीं हैं, तदनुसार, लोग राजा के प्राधिकार का आज्ञापालन करने को धार्मिक निषेधाज्ञा द्वारा बाध्य हैं। 'राजाओं के ईश्वरीय अधिकार' संबंधी यह धारणा पूरे मध्यकाल में व्याप्त रही। बहरहाल, आधुनिक काल में नए ज्ञान के आगमन के साथ ही इसने अपना महत्त्व खो दिया।

राजनीतिक दायित्व के दैवी सिद्धांत की आलोचना

राजनीतिक दायित्व संबंधी दैवी सिद्धांत को ग्रोटियस, हॉब्स, लॉक जैसे प्रतिष्ठित विचारकों की ओर से अत्यंत कटु आलोचना झेलनी पड़ी, जिन्होंने उसके पराभौतिकीय (meta physical) आधारवाक्यों को निरस्त कर दिया और राजनीतिक दायित्व का स्रोत लोगों की सहमति में तलाशा। जब धर्मनिरपेक्षवाद बढ़ने के कारण चर्च अलग हो गए, लौकिक

शक्तियाँ अलौकिक शक्तियों की तुलना में सर्वोपरि हो गईं। हालाँकि, लोकतंत्र के विकास ने इस सिद्धांत की नियति तय कर दी। यहाँ तक कि दायित्व के अन्य पराभौतिकीय आधार, जैसे फ़ासिज़्म या साम्यवाद, जो किसी नेता, वर्ग अथवा पार्टी के ऐतिहासिक दौत्य (mission) कार्य पर आधारित थे, भी विज्ञान से कोई समर्थन न पा सके। वे उसी प्रकार की धार्मिक व्यवस्था वाले थे, जैसे कि दैवी अधिकार सिद्धांत। इस प्रकार, दैवी सिद्धांत ने आधुनिक काल में अपना पूरा आकर्षण खो दिया।

16.5.2 सहमति/संविदा सिद्धांत : लोकेच्छा (Will of the People) में अनुमोदन

यद्यपि दायित्व के आधार रूप में संविदा अथवा सहमति की धारणा काफ़ी पुरानी है और प्राचीन हिन्दू विचारधारा में भी पाई जाती है, यह मुख्यतः 16वीं व 17वीं शती के यूरोप में हुआ कि राजनीतिक दायित्व को स्पष्ट करने के लिए अनुबंध के कृत्रिम सिद्धांत विकसित किए गए। इस सिद्धांत की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति थॉमस हॉब्स और जॉन लॉक के लेखों में पायी जाती है। उनका मत है कि जो मनुष्य प्राकृत अवस्था में रहते थे एक अनुबंध में आ गए, जिससे राजनीतिक प्राधिकार अस्तित्व में आया, जो पुनः जनता की सहमति पर आधारित था। सामाजिक अनुबंध की धारणा ने, हालाँकि रूसो के पास पहुँचकर एक उच्च रूप से दार्शनिक रूप ले लिया, जिन्होंने ''जनरॅल विल'' में राजनीतिक दायित्व के तथ्य को रखा। इसका मतलब था कि मनुष्य एक सभ्य समाज में प्रवेश करने के बाद महज अपनी भूख के आवेग का दास नहीं रहा, बल्कि वह आम भलाई (यथा, लोक कल्याण) के कानून का पालन करने को बाध्य हो गया।

इस प्रकार, सामाजिक संविदा सिद्धांत इस धारणा को सही ठहराता है कि शासक प्राधिकरण को, यदि उसे विधिसंगत बनना है, अन्ततोगत्वा सरकार की सहमति पर ही टिका होना चाहिए। यदि सरकार अनुबंध की शर्तों का उल्लंघन करती है, तो लोगों को विरोध करने का अधिकार है। इस सिद्धांत का निहितार्थ जनता के अधिकारों व स्वतंत्रताओं की रक्षा करने और शासकों के मनमानेपन को रोकने की दिशा में रहा है।

राजनीतिक दायित्व के सहमति सिद्धांत संबंधी आलोचना

यद्यपि सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में संविदा सिद्धांत के खुल खेलने के दिन थे और अब भी एक लोकतांत्रिक व्यवस्था का नैतिक आधार तैयार करने के लिहाज से उसका अपना ही महत्त्व है, यह कुछ कमज़ोरियों से ग्रस्त है। यह सिद्धांत राज्य को एक कृत्रिम संगठन बना देता है। साथ ही, सहमति का तत्त्व जैसा कि एक प्राक्काल्पनिक (hypothetical) प्राकृत अवस्था में किए गए किसी अनुबंध में प्रतिष्ठापित था, यह कल्पना मात्र से अधिक कुछ नहीं था जो कि विद्यमान पीढ़ी दर बिल्कुल भी बाध्यकारी नहीं था। इस प्रकार, लोग इस दलील पर एक विद्रोह-प्रदर्शन की हद तक जा सकते हैं कि वे अपनी स्वीकृति को वापस ले सकते हैं, यदि सरकार ने ऐसा कोई काम किया हो जो ''लोकेच्छा'' का उल्लंघन करता हो। परिणाम यह हुआ है कि राजनीतिक दायित्व का सिद्धांत एक विद्रोह के सिद्धांत में बदल गया है।

बोध प्रश्न 2

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलायें।

1) राजनीतिक दायित्व के दैवी सिद्धांत की क्या सीमाएँ हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) सामाजिक संविदा सिद्धांत का मुख्य लक्षण क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

16.5.3 निर्देशात्मक सिद्धांत : स्थापित परिपाटियों व परम्पराओं के सम्मान में अनुमोदन

इस सिद्धांत के अनुसार, राजनीतिक प्राधिकार और उसका सम्मान ''रिवाज़ी अधिकारों'' के सिद्धांत पर आधारित है। प्राधिकार विधिसंगत होता है, यदि वह लम्बे समय से चले आ रहे रिवाज़ अथवा परम्परा द्वारा अनुमोदित है। लोग अपने शासकों का आज्ञापालन करते हैं क्योंकि आज्ञापालन-संबंधी वास्तविकता एक सुस्थापित परिपाटी का रूप ले चुकी है। परम्परावादी जन राज्य को वर्षों में जाकर तैयार हुए एक उत्कृष्ट प्राधार के रूप में देखते हैं, जो एक विवादास्पद हित-संतुलन को दर्शाता है। राज्य जैसी संस्थाएँ क्रमिक रूप से विकसित होती हैं और धीरे-धीरे परिवर्तन के प्रति अनुकूलित हो जाती है; इस प्रकार, यह कर्त्तव्य बनता है कि केवल क्रमिक शान्तिपूर्ण परिवर्तन हेतु काम करते समय राज्य प्राधिकार को स्वीकार किया जाए और उसका आज्ञापालन किया जाए। राजनीतिक प्राधिकार संबंधी इस रूढ़िवादी सिद्धांत की हैगेल अपने लेखों में अभिपुष्टी करते हैं, जो यह मानते हैं कि नैतिकता की धारणाएँ राज्य के रीति-रिवाज़ों एवं संस्थाओं में विकसित होती हैं। और, चूँकि इस प्रक्रिया में अन्तिम चरण वर्तमान स्थापित व्यवस्था ही है, इसे हमारा आज्ञापालन प्राप्त करने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त, चूँकि राज्य ही एक लम्बे समय में विकसित और प्रथागत नैतिकता है, यह हर व्यक्ति का फ़र्ज़ बनता है कि वह उस काम को करे जिसकी राज्य उससे अपेक्षा करता है।

बक रूढ़िवाद के सबसे प्रसिद्ध प्रवक्ताओं में एक हैं, जिनका मत है कि मनुष्य के लिए रीति-रिवाज़ों व परम्पराओं का पूरी तरह निरादर करना बुद्धिमानी नहीं है। राजनीतिक दायित्व की वास्तविकता परम्परा को अटल सम्मान दिए जाने में निहित है, जो कि एक परमपावन कार्य है। इस प्रकार, उन्होंने अमेरिकी उपनिवेशकों के विद्रोह का समर्थन किया, जो अंग्रेज़ों के पारम्परिक अधिकारों के पक्ष में था, परन्तु फ्रांसीसी क्रांति का विरोध किया क्योंकि वह ''राष्ट्रीय परम्पराओं से पृथक्त'' व्यक्ति के दुर्बोध अधिकारों द्वारा प्रेरित थी।

प्रोफ़ेसर एम. ओक्शौट दायित्व-संबंधी परम्परावादी दृष्टिकोण के एक समकालीन समर्थक हैं। उनके अनुसार, राजनीतिक कार्यवाहियाँ कभी भी परम्परागत के सिवा और कुछ नहीं हो सकतीं क्योंकि राजनीतिक विचार राजनीति गतिविधि से पहले आ ही नहीं सकता। राजनीति एक कौशल है, जो अभ्यास से सीखा जाता है न कि सैद्धांतिक सूत्रों अथवा पद्धतियों के माध्यम से। इस प्रकार, हम जब कभी भी दूसरे लोगों की राजनीति को पूरी तरह से समझने का प्रयास करते हैं, तो वह हमेशा हमारे अपने तानेबाने के भीतर ही होता है।

राजनीतिक दायित्व संबंधी निर्देशात्मक सिद्धांत की आलोचना

अन्य परिकल्पनाओं की तरह निर्देशात्मक सिद्धांत की भी अपनी कमज़ोरियाँ हैं। राजनीतिक दायित्व का स्रोत सिर्फ़ सुस्थापित प्रथाओं को आदर देने में ही नहीं, बल्कि, उन्हें समाप्त करने में भी निहित है। लोग बदलाव चाहते हैं और जब कभी उनकी आशाएँ कुंठित होती हैं तो वे क्रांति का मार्ग अपना लेते हैं। ओक्शौट की इस आधार पर विशेष रूप से आलोचना हुई है कि वह क्रांति को भी अतीत से जुड़ा एक अनुभव मानते हैं और उसके द्वारा, उसे एक विशुद्ध रूढ़िवादी विषय बना देते हैं। इसका मतलब यह है कि इस सिद्धांत के आख्याता अफ्रीकी देशों के नीग्रो लोगों को भी यह सलाह देंगे कि वे प्रजातीय भेदभाव कानूनों को 'विधिसंगत' के रूप में स्वीकार कर लें क्योंकि वे 'राज्य की सुस्थापित परम्पराओं' पर आधारित हैं। बहरहाल, यह बात सच्चाई से दूर है। वस्तुतः लोग सिर्फ़ अपनी परम्पराएँ वहीं तक निभाते हैं, जहाँ तक कि उनकी उपयोगिता होती है और जब उनकी उपयोगिता नहीं रहती तो वे उन्हें समाप्त कर देते हैं।

16.5.4 आदर्शवादी सिद्धांत : मनुष्य की युक्तियुक्तता (Rationality) में अनुमोदन

आदर्शवादी जन राजनीतिक दायित्व का स्रोत मनुष्य की अन्तर्जात बौद्धिकता में खोजते हैं। मनुष्य को एक 'राजनीतिक और बुद्धिसम्पन्न जीव' माना जाता है और राज्य को एक समग्र समाज के तद्रूप 'आत्म-सन्तुष्टकारी समुदाय', जैसे कि व्यक्ति और समाज के बीच कोई वैपरीत्य ही न हो। परिणामस्वरूप, कोई व्यक्ति मात्र राज्य के आदेश को मानकर भी समाज में यथासंभव श्रेष्ठ विकास का प्रयास कर सकता है।

दूसरे शब्दों में, राजनीतिक दायित्व का स्रोत राज्य के आज्ञापालन में निहित है। प्लैटो और अरस्तू दोनों का दावा है कि इसमें समाविष्ट राज्य और व्यक्तिजन 'एक जैविक समष्टि का निर्माण करते हैं'। इस प्रकार की स्वीकारोक्ति हैगेल की ओर से सबसे अच्छी अभिव्यक्ति पाती है, जो व्यक्ति की स्वतंत्रता को राज्य के सम्पूर्ण आज्ञापालन से अभिन्न समझते हैं। ग्रीन भी कहते हैं कि राजनीतिक दायित्व संबंधी विचार नैतिक दायित्व के विषय से जुड़ा है। उनका सुझाव है कि केवल उन्हीं कार्यों को दायित्व बनाया जाना चाहिए जो कि एक नैतिक साध्य के सेवार्थ किए जाते हैं।

राजनीतिक दायित्व के आदर्शवादी सिद्धांत संबंधी आलोचना

आदर्शवादी सिद्धांतों की इस आधार पर आलोचना की गई है कि वे बहुत गूढ़ हैं। वह सामान्य बातों को एक अति दार्शनिक अथवा पराभौतिकीय रूप में रखता है जो एक औसत जानकारी रखने वाले व्यक्ति की समझ से बाहर होता है। साथ ही, राजनीतिक दायित्व की धारणा न सिर्फ़ राज्य के प्रति व्यक्ति के आज्ञापालन से संबंधित है, वरन् राजनीतिक प्राधिकार के दुष्प्रयोग का विरोध करने संबंधी अधिकार से भी अभिन्न रूप से जुड़ी है। आदर्शवादी जन नहीं चाहते कि राजनीतिक दायित्व के उनके सिद्धांत में विरोध करने के

अधिकार को शामिल किया जाए। यदि ग्रीन और बोसांक ने कुछ अपवाद स्थितियों में अधिकार को मान्यता भी दी है, तो उनका प्रतिपादन अस्पष्ट व अनिश्चित है और अंग्रेज़ी उदारवाद के बोझ से पीछा छुड़ाने में विफल रहा है। त्रीत्शके तो यहाँ तक कहते हैं कि झुको और राज्य की पूजा करो। इस प्रकार, राजनीतिक दायित्व की धारणा प्राधिकार संबंधी अन्धभक्ति के व्यादेश (injunction) में बदल जाती है।

16.5.5 मार्क्सवादी सिद्धांत : राजनीतिक दायित्व का सामाजिक दायित्व में अन्त्य (eventual) रूपान्तरण

राजनीतिक दायित्व का मार्क्सवादी सिद्धांत इस विषय पर अन्य सिद्धांतों से मूलतः भिन्न है। यह क्रांति-पूर्व चरण में राजनीतिक दायित्वहीनता के प्रकरण को, क्रांतिकारी चरण में सम्पूर्ण राजनीतिक दायित्व को और क्रांति-पश्चात् चरण में सामाजिक दायित्व में उसके संभावित कायांतरण को अनुमति देता है। दूसरे शब्दों में, राजनीतिक दायित्व का मामला प्राधिकार के लक्षण के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा है। मार्क्सवादी राजनीति-सिद्धांत में, राज्य का वर्णन पूँजीवादी समाज में एक 'बुर्जुआ संस्था' के रूप में किया जाता है। इसका अर्थ है कि एक सफल क्रांति के बाद, कामगार वर्ग सत्ता के साधन अपने हाथों में रखता है, ताकि समाजवादी व्यवस्था को इस तरह से समेकित कर सके कि समाजवाद के अंतिम चरण में उसके 'ह्रास' की तैयारी हो। मार्क्सवाद के अनुसार, राजनीतिक दायित्व के अन्तर्गत आते हैं – पूँजीवाद के युग में 'नगण्य राज्य' के मामले, 'सर्वहारा वर्ग की तानाशाही' के काल में 'नए राज्य', और 'मुख्य राज्य' जब 'वर्गरहित' समाज सामाजिक अस्तित्व के 'राज्यहीन' प्रतिरूप में अपनी पराकाष्ठा पाता है।

राजनीति और उसके साथ राजनीतिक दायित्व-संबंधी मार्क्सवादी सिद्धांत का आरम्भ-बिन्दु है – 'समग्र समाज के न्यासी, साधन, अथवा अभिकर्त्ता के रूप में राज्य के इस दृष्टिकोण का उसके द्वारा सुस्पष्ट अस्वीकरण'। राजनीतिक दायित्व का मामला तब उठता है जब क्रांति के बाद 'नया राज्य' अस्तित्व में आता है। इस सिद्धांत में ग़ौरतलब बात यह है कि पूँजीवादी समाज में जो वर्जित होता है, वह समाजवादी व्यवस्था में विहित होता है। न सिर्फ़ यही, बुनियादी फेर-बदल भी होते हैं जो राज्य के किसी भी विरोध को पूरी तरह निषिद्ध करते हैं। मार्क्सवादियों का काम है राजनीतिक दायित्व की धारणा को स्थायी क्रांति के आदेशों के बनिस्पत कम महत्त्व देना। दूसरे शब्दों में, राजनीतिक दायित्व-संबंधी धारणा का अस्तित्व समाजवाद के अंतिम चरण (साम्यवाद कहा जाने वाला) में राज्य के कमज़ोर पड़ने के साथ ही समाप्त हो जाता है और अंतिम रूप से सामाजिक दायित्व के व्यादेश में बदल जाता है। इस प्रकार, समाज स्वतंत्र और समान उत्पादकों के साहचर्यों से मिलकर बनता है, जो एक सर्वमान्य और युक्तियुक्त योजना पर जानकारीपूर्वक अमल करता है।

राजनीतिक दायित्व संबंधी मार्क्सवादी सिद्धांत की आलोचना

मार्क्सवादी सिद्धांत का आलोचनात्मक अध्ययन यह दर्शाता है कि वह राजनीतिक दायित्व की समस्या का जिस प्रकार विवेचन करता है, वह वास्तविक परिप्रेक्ष्य से काफ़ी दूर है। पूँजीवादी चरण में जिसकी ज़ोरदार वकालत की जाती है, वही सामाजिक विकास के आगामी चरण में दृढ़ता से ठुकरा दिया जाता है। उन लोगों को, जो 'मध्यवर्गीय समाज' की अवज्ञा हेतु प्रेरित किए जाते हैं, इस नई सामाजिक व्यवस्था के उद्घाटन पश्चात् राज्य का कतई आज्ञापालन न करने का आदेश दिया जाता है। इस प्रकार, मार्क्स पर मात्र समीचीनता (expediency) के आधार पर राजनीतिक दायित्व संबंधी सिद्धांत को जन्म देने का आरोप लगाया जाता है और वह उस स्वतंत्र व्यक्ति की उपेक्षा करते हैं, जिसके सिर्फ़ अनुभव को ही राज्य के कानूनों का उसके द्वारा आज्ञापालन किए जाने को तय किए जाने में स्थान दिया जाता है।

बोध प्रश्न 1

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलायें।

1) राजनीतिक दायित्व का आदर्शवादी सिद्धांत क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) राजनीतिक दायित्व-संबंधी मार्क्सवादी सिद्धांत की क्या सीमाएँ हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

16.6 राजनीतिक दायित्व का मूल्यांकन

एक सही अर्थ में, राजनीतिक दायित्व-संबंधी धारणा कोई राजनीतिक नहीं बल्कि एक नैतिक विषय है। तथापि, नैतिकता का मापदण्ड समय-समय पर, स्थान-स्थान पर और जन-जन के लिए भिन्न-भिन्न होता है। राजनीतिक दायित्व के आयाम भी बदलते हैं और इसी प्रकार, जन-विरोध के व्यादेश भी भिन्न-भिन्न होते हैं। राज्य न्याय परिणामों का एक आवश्यक साधन है और यदि वह यह काम एक व्यापक सर्वसम्मति के आधार पर करता है, तो एक प्रकार की संविदात्मक समझ पैदा होती है कि जो कुछ राज्य न्याय व कल्याण को प्रोत्साहित करने के लिए करता है, हम उसके बदले में उसका आज्ञापालन करने का वचन दें।

16.7 क्रांति : प्रकृति और निहितार्थ

क्रांति-संबंधी विचार में न सिर्फ़ राजनीतिक, बल्कि मानव जीवन के आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक आयाम भी आते हैं। इस शब्द की एक सटीक परिभाषा में परिवर्तन के निहितार्थ विषयक विभिन्न शाखा विस्तार हैं, वह चाहे शांतिपूर्ण हो अथवा हिंसक, समग्र हों अथवा आंशिक, छोटा हो या बड़ा। राजनीति-सिद्धांत में, संबद्ध संस्थाओं एवं प्राधारों में परिवर्तन के साथ-साथ सरकार में फेरबदल का एक विशिष्ट संकेतार्थ का भी स्थान होता है। अपने मूल अर्थ में, 'इसमें-स्थापित राजनीतिक और पूर्व-व्यवस्था और उससे बुनियादी रूप से भिन्न एक नई व्यवस्था की स्थापना को चुनौती शामिल होती है।'

इस अभिपुष्टि के साथ कि जहाँ विद्रोह व क्रांति दोनों वर्तमान व्यवस्था में एक आकस्मिक, झटके से और महत्त्वपूर्ण परिवर्तन का संकेत देते हैं, और पूर्ववर्ती परवर्ती की भाँति 'गहन परिवर्तन' की धारणा को समाविष्ट नहीं करता, दोनों के बीच भेद की एक सीमारेखा खींची जा सकती है। एक आकस्मिक, बड़ा और गहन परिवर्तन लाने में प्रयुक्त साधन विशुद्ध संवैधानिक अथवा अहिंसात्मक से लेकर पूरी तरह हिंसात्मक और उग्रवादी तक हो सकते हैं। जब कोई क्रांति किसी क्रांति के परिणामों को बिगाड़ देने के लिए होती है तो ''प्रति-क्रांति'' की अवधारणा जन्म लेती है; उदाहरण के लिए, चीनी साम्यवादी पार्टी ने 1927 में एक क्रांति की और चियांग के-शेक के अधीन 'राष्ट्रवादियों' द्वारा उसके दमन को एक 'प्रति क्रांति' का नाम दिया गया। इस प्रकार, एक क्रांति निश्चित रूप से अधीनता के प्राधार को बदल डालने पर अभिलक्षित होती है।

16.8 क्रांति के लक्षण

यह सत्य है कि विश्व के विभिन्न हिस्सों में अनेक क्रांतियाँ हुई हैं, फिर भी क्रांति का कोई उद्देश्य और आम प्रतिमान स्थापित करना अथवा सभी कालों में प्रयोज्य कोई उपयुक्त परिभाषा करना असंभव है। अतएव हमें अपना ध्यान क्रांति के निहितार्थ और सामान्य लक्षणों पर लगाना चाहिए, ताकि इस अवधारणा-विशेष की एक बेहतर समझ रख सकें। ये हैं :

- एक प्रक्रिया का आरम्भ
- एक परिवर्तन का संकेत
- एक सुसंगत योजना की सूचना
- राजनीतिक नेतृत्व का कल्पित महत्त्व।

16.8.1 एक प्रक्रिया का प्रारम्भ

क्रांति एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें किसी राज्य द्वारा अपनाई गई राजनीतिक दिशा की या तो सम्पूर्ण जनता अथवा उसके किसी एक खास हिस्से की नज़र में उत्तरोत्तर अविश्वासनीयता पैदा हो जाती है। इस प्रकार की प्रक्रिया किसी क्रांतिकारी घटना अथवा अन्य गतिविधियों में पराकाष्ठा पर पहुँच सकती है, यथा भड़ास निकालना, हो-हल्ला करना, अशान्ति फैलाना अथवा अधिक शक्तिशाली साधनों का प्रयोग कर सरकार बदल डालना।

16.8.2 एक परिवर्तन का द्योतन

जब प्रक्रिया शुरू हो जाती है, क्रांति सशस्त्र बलों के प्रयोग अथवा उसके प्रयोग की विश्वास करने योग्य धमकी द्वारा एक स्पष्ट रूप से सीमांकित समय-बिंदु पर स्थापित व्यवस्था, अथवा सरकार के परिवर्तन का संकेत करती है। इसके अलावा, यह परिवर्तन आकस्मिक, न कि क्रमिक होना चाहिए। यहाँ, महज प्राधिकार का परित्याग ही काफ़ी नहीं है। वर्तमान प्राधिकरण 'वैधता' रहित हो जाने के कारण उसकी जगह एक नया प्राधिकरण आना चाहिए जो 'ईमानदार' हो। जैसे कि यह प्राधिकरण अव्यवस्था, विद्रोह अथवा राजद्रोह जैसी किसी गतिविधि से भिन्न हो।

16.8.3 एक संलयित (Coherent) कार्यक्रम का अर्थ प्रकटन

क्रांति किसी राज्य के राजनीतिक या सामाजिक अथवा दोनों निर्देशों में एक न्यूनाधिक संगत परिवर्तन योजना का भी संकेत करती है, जो कि किसी क्रांतिकारी घटना पश्चात्

सत्ता परिवर्तन हो जाने के बाद राजनीतिक नेतृत्व द्वारा प्रवृत्त की जाती है। क्रांति के किसी भी प्रकार में - चाहे वो उदारवादी हो, साम्यवादी हो, क्रांतिकारीप्राय हो, सीमित या असीमित हो, वास्तविक या उप-क्रांति हो, नकारात्मक अथवा सकारात्मक पहलुओं के साथ - सभी कार्यवाही व कार्यक्रम की एक घनी विधि-संहिता का पालन करते हैं, ताकि यथासंभव अधिक-से-अधिक वांछित परिणाम पा सकें।

16.8.4 राजनीतिक नेतृत्व की कल्पित मर्यादा

क्रांति किसी क्रांतिकारी परिवर्तन से जन्मे राजनीतिक नेतृत्व को एक कल्पित महत्त्व प्रदान किए जाने की ओर भी इशारा करती है, यथा राज्य की जायज़ सरकार के रूप में अल्पावधि महत्त्व। उदाहरण के लिए, 1922 में इटली में फासीवाद और 1933 में जर्मनी में नाज़ीवाद के उद्घाटन का क्रांतियों के रूप में स्वागत किया गया, हालाँकि उन्होंने उदारवादी लोकतंत्र की नियति तय कर दी। इन देशों के इन राष्ट्र-नायकों की 'देवदूतों' के रूप में पूजा की गई और लोगों ने एक स्वेच्छाचारी शासन-व्यवस्था के स्थान पर संवैधानिक सरकार लाने के लिए उत्साह दिखाए बग़ैर तानाशाही का विकल्प चुना।

16.9 क्रांति : एक घटनामात्र अथवा एक घटनाक्रम

क्रांति महज स्थापित व्यवस्था को उखाड़ फेंकने से ही ताल्लुक नहीं रखती। यह समान रूप से एक नई व्यवस्था की स्थापना से भी संबंध रखती है। इस प्रकार, यह महज एक घटना नहीं, बल्कि घटनाओं का एक सिलसिला है। यह वर्तमान व्यवस्था को चुनौती दिए जाने से आरंभ होती है और एक नई व्यवस्था लागू होने तक चलती रहती है। इन दोनों बातों के बीच जो होता है उसमें क्रांति की अवस्थाएँ जन्म लेती हैं। ये विभिन्न चरण अथवा घटनाक्रम नीचे ब्यौरेवार उल्लिखित हैं :

- कोई क्रांति तब शुरू होती है जब लोगों की आशाएँ बहुत ऊँची हों और बड़े नेतागण कुछ ज़्यादा ही पूर्णतावादी शब्दाडम्बर में डूबे हों। परिणाम 'पुराने' के स्थान पर 'नया' होता है।

- दूसरी अवस्था तब शुरू होती है जब सत्ता हथिया ली जाती है और क्रांतिकारी नेताओं के सामने शासन-संबंधी वास्तविकताएँ आती हैं। यहाँ मत-वैविध्य देखा जाता है, जो नरमपंथियों व उग्रपंथियों का श्रेणि-निर्धारण करता है। तथापि, जीत उन उग्र उन्मूलनवादियों की ही होती है जो सत्ता अपने हाथों में केन्द्रित रखते हैं।

- हर कीमत पर क्रांतिकारी विचारों व लक्ष्यों को चरितार्थ करने के दुस्साहसी प्रयास किए जाते हैं। इससे एक ऐसी प्रतिक्रिया का ख़तरा उत्पन्न होता है, जो एक स्वास्थ्य-लाभ अवधि को आवश्यक बना देती है।

- इसके बाद एक मंदी की अवस्था आती है। नाराज़ियों और इस्तीफ़ों का दौर चलता है जो किसी तानाशाह को उठ खड़ा होने के लिए बहुत फलद आधार बनाता है।

- अन्तिम अवस्था वो है जिसमें क्रांतिकारी प्रतीक धीरे-धीरे अपनी पकड़ खो देते हैं और तानाशाही एक निर्वस्त्र सत्ता नज़र आती है। तब, जो उखाड़ फेंका गया था और जो लाया गया था के बीच पुनः मेल-मिलाप के साथ पुनर्स्थापना की दिशा में एक प्रवृत्ति जन्म लेती है।

बोध प्रश्न 1

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलायें।

1) क्रांति से आप क्या समझते हैं? यह विद्रोह से किस प्रकार भिन्न है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) क्रांति के मुख्य लक्षण गिनाएँ और उनका वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

16.10 क्रांति के विभिन्न सिद्धांत

क्रांति के अर्थ, प्रकृति व कारणों को उजागर करने के लिए विभिन्न सिद्धांत सामने आए हैं। हम ऐसे ही चार सिद्धांतों पर सूक्ष्म दृष्टि डालेंगे जो क्रांति की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं।

16.10.1 उदारवादी सिद्धांत

क्रांति का उदारवादी सिद्धांत परिवर्तन प्रक्रिया में यथापूर्व स्थिति बनाए रखने पर ज़ोर देता है। कहना चाहिए कि परिवर्तन बोध सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक जीवन की वर्तमान अवस्था को सुरक्षित रखते हुए आकस्मिक किया जाता है। इस प्रकार का विचार प्लैटो व अरस्तू के राजनीति-दर्शन में भली-भाँति प्रकट होता है। क्रांति से प्लैटो का अभिप्राय था एक आदर्श राज्य की स्थापना। अरस्तू के लिए क्रांति का निहितार्थ था, किसी दूसरे द्वारा सरकार का रूप-परिवर्तन अथवा शासकों के प्रकार में बदलाव, जो एक क्रांति के बराबर हो।

एक आशंका भाव से क्रांति तक पहुँचने की प्रवृत्ति और इस प्रकार, विद्यमान व्यवस्था के साथ सामंजस्य में परिवर्तन के विचार को जन्म देने का प्रयास चलता रहा। इसके अतिरिक्त, जॉन मिल्टन ने क्रांति के मामले को स्वतंत्रता कायम रखने से जोड़ा और ऐसी स्थिति में एक नई सरकार चुनने तक की बात कही, यदि वर्तमान शासकगण लोगों को उनकी स्वतंत्रता से वंचित करते हों। तथापि, क्रांति के अर्थ और प्रकृति संबंधी उदारवादी

व्याख्या जॉन लॉक के पास आकर एक महत्त्वपूर्ण मोड़ लेती है। वास्तविकता यह कायम रहती है कि किसी भी संभावित सीमा तक यथापूर्व स्थिति संबंधी त्राण के साथ सामंजस्य में परिवर्तन करने का मूलसिद्धांत पूरी तरह अत्यक्त (undiscorded) रहता है। इस प्रकार, 1688 की इंग्लिश क्रांति और 1789 की फ्रांसीसी क्रांति पर परिवर्तन-विरोधी होने का आरोप लगाया जाता है।

उदारवादी सिद्धांत की आलोचना

इस सिद्धांत की इस आधार पर आलोचना की गई है कि विचारकों ने एक क्रांति-कार्य के रूप में अतीत की ओर लौटने को सही ठहराने का प्रयास किया है। परिणामतः, क्रांति के उदारवादी सिद्धांत पर प्रतिक्रियात्मक, परिवर्तन-विरोधी और यहाँ तक कि प्रति-क्रांतिकारी होने का दोष लगाया गया है। यहाँ, क्रांतिकारियों ने स्वयं को 'मनुष्य के अधिकारों' के नायकों के रूप में घोषित किया। परन्तु ऐसे किन्हीं भी मानदण्डों का विश्लेषण जिनके द्वारा उन्होंने अपने सिद्धांतों को प्रभावी बनाया, स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि 'मनुष्य के अधिकारों' से वस्तुतः उनका तात्पर्य कुछ लोगों के एक सीमित वर्ग के अधिकारों से था जिनके पास समाज में उत्पादन साधन थे। इस प्रकार, उदारवादी परम्परा एक बौद्धिक क्रांति थी जो कि मुख्यतः औद्योगिक क्षेत्र में सम्पत्ति-धारकों के हित में चलायी गई थी।

16.10.2 मार्क्सवादी सिद्धांत

मार्क्सवादी सिद्धांत ने मूल रूप में 'स्थायी क्रांति' की धारणा पर ज़ोर दिया। मार्क्सवादियों का मत था कि कोई सामाजिक क्रांति तब होती है जब विद्यमान उत्पादन-संबंध उत्पादन-बलों के भावी विकास में एक बाधा के रूप में काम करते हैं। इस प्रकार, मार्क्स के अनुसार, आज तक हुई आधुनिक युग की प्रमुख राजनीतिक क्रांतियों की व्याख्या ऐसे दीर्घावधि सामाजिक व आर्थिक विकासों के परिणामों के रूप में की जानी चाहिए, जिसमें आर्थिक शोषण के नए रूप सामने आयें। उनके अनुसार, 'कोई राजनीतिक क्रांति उस स्थिति में एक सामाजिक क्रांति होती है जब उसमें सामाजिक वर्गों का संघर्ष शामिल हो।'

इस प्रकार, मार्क्स 'मध्यवर्गीय क्रांति' को मान्यता देते हैं जिसके द्वारा 'सामन्ती राज्य को उस मध्यवर्ग द्वारा उखाड़ फेंका जाता है जो उसी के अन्दर पनपा होता है, और मध्यवर्गीय शासन के साधन के रूप में एक नए राज्य का निर्माण किया जाता है।' उनको उम्मीद थी कि एक लोकतांत्रिक रूप से उन्नत देश (जैसे इंग्लैण्ड, हॉलैण्ड, फ्रांस और अमेरिका) में समाजवादी क्रांति 'मत-पेटी युद्ध' के माध्यम से हो सकती है। कुल मिलाकर, बहरहाल, मार्क्सवादी सिद्धांत का वज़न हिंसात्मक तरीके प्रयोग करने पर ही है। सिर्फ़ यही नहीं, वह इस सम्भावना पर भी विचार करता है कि धारणाएँ, आस्थाएँ, दोषसिद्धियाँ, रीति-रिवाज़ और लोकजीवन के तौर-तरीके बदलते हैं ताकि उनका समाजवादी व्यवस्था के मानदण्डों के साथ तालमेल बिठाया जा सके। इस प्रकार, 'सांस्कृतिक क्रांति' शुरू की जाती है ताकि लोगों का बलात् मत परिवर्तन किया जा सके।

क्रांति की प्रक्रिया यहाँ भी नहीं थमती। यह एक स्थायी कारोबार है, जो 'राज्यहीन समाज' के अन्तिम चरण की ओर आह्वान करता है। इसका निहितार्थ 'क्रांति निर्यात' भी है, जिसका मतलब है अन्तरराष्ट्रीय समाजवाद। *कम्युनिस्ट घोषणापत्र* प्रबोधन के इन शब्दों के साथ खत्म होता है : 'सभी देशों के मज़दूर एक हों। तुम्हारे पास खोने के लिए बेड़ियों के सिवा कुछ भी नहीं है। तुम्हारे पास जीतने के लिए संसार है।'

मार्क्सवादी सिद्धांत की आलोचना

इस सिद्धांत के खिलाफ़ अभिलक्षित एक प्रमुख आलोचना यह है कि यह 'समाजवादी क्रांति' हो जाने के बाद रुक जाता है। क्रांति का मूल रूप से अर्थ होता है बेहतरी के लिए बदलाव। परन्तु एक समाजवादी राज्य में यह एक वर्जना है। प्रतिपक्ष का दमन किया जाता है और लोगों पर दबाव जाता है कि वे अपने आपको बदलें, जो कि ज़रूरी नहीं कि बेहतरी हेतु बदलाव के बराबर ही हो। इस प्रकार, मार्क्स का दृष्टिकोण परिसीमित कहा जा सकता है।

इस सिद्धांत में एक और कमज़ोरी यह है कि क्रांतिकारी राजनीतिक कार्यवाही और मार्क्स के सामाजिक-आर्थिक विकास संबंधी आम सिद्धांत के बीच सही संबंध आशाजनक रूप से अनिश्चित अर्थात्मक है। यह वर्ग-संघर्ष के विवर्धन (elaboration) पर खड़ा होता है। यह सिद्धांत समस्यामूलक है क्योंकि विचारकों के बीच हम विवाद पाते हैं। जहाँ त्रोत्सकी ने 'क्रांति निर्यात' की इच्छा की, स्टालिन ने एक देश 'में समाजवाद' का नारा दिया। क्रुशचेव ने पूँजीवादी राज्य के साथ शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के सिद्धांत की रट लगाई।

16.10.3 नव-उदारवादी सिद्धांत

नव-उदारवादी विचारकों के अनुसार क्रांति का अर्थ एक भिन्न संकेत देता है और इसीलिए, इसके कारण अकेले अर्थशास्त्र के क्षेत्र में नहीं ढूँढे जा सकते। इस संदर्भ में अनेक दृष्टिकोण उभरे हैं, सभी यही तथ्य सामने रखते हैं कि क्रांतियाँ मानव समाज-विषयक हिंसक उपद्रव हैं, जो एक शासक गुट को ऐसे दूसरे गुट द्वारा हटाये जाने का कारण बनते हैं, जो एक अधिक व्यापक जनसमर्थनाधार रखता है। ऐतिहासिक तथ्य दर्शाते हैं कि ''वर्ग-चेतना'' जैसा कुछ भी न रखने वाले लोग अपनी नियति को बदलने के लिए विद्रोह हेतु उठ खड़े होते हैं। इस प्रकार, कोई क्रांति एक अचानक प्रादुर्भाव (outbreak) की बजाय एक गहरे जड़ पकड़ी और धीरे-धीरे विकसित होती राजनीतिक व सामाजिक कु-रचनाओं का परिणाम दिखाई पड़ेगी। तथापि, अन्तिम चरण में, वे आकस्मिक और हिंसक हो जाती हैं।

क्रांति के कारण पर मनोविज्ञान के आधाररूप दृष्टिकोण से चर्चा की गई है। डेविड सी. वार्त्ज़ ने लोगों की उदासीनता को एक कारक के रूप में स्पष्ट किया, जिसे 'शत्रुकरण' (alienation) के नाम से जाना जाता है। इस आधार पर, उन्होंने एक 'सत्याभासी सिद्धांत' (plausible theory) तैयार किया, जिसमें शुरू में द्वैधवृत्ति (ambialence) होती है जो 'विवाद' की ओर चलती है, तदोपरांत 'विवेकपूर्ण संगति' पर पहुँचती है और अन्ततः 'सामन्जस्य' पर। राजनीति से वापसी एक ख़तरनाक संकेत है, क्योंकि वह व्यवस्था के प्रति उदासीनता का भाव पैदा करती है और परिणाम होता है, जनाक्रोश का फूटना।

नव-उदारवादी सिद्धांत की आलोचना

वर्तमान शताब्दी के नए उदारवादी विचारकों ने एक तरीके से मार्क्स का ही अनुसरण करने का प्रयास किया है, जहाँ तक कि उन्होंने सत्ता हथियाने में बलप्रयोग पर ज़ोर दिया है, और उसको ठुकराया भी है जहाँ तक कि वह अपना ध्यान केवल वर्ग-संघर्ष के मानदण्डों तक ही सीमित रख सकते हैं। इसने विभिन्न संकेत देती क्रांति के अर्थ की ओर प्रवृत्त किया है।

कोई क्रांति सिर्फ़ एक घटनामात्र नहीं होती, जैसा कि उदारवादी विचारकों द्वारा कहा गया, जिसमें एक वर्ग दूसरे को हटा देता है और सत्ता हथिया लेता है। वस्तुतः, फिर भी, ऐसा है कि यह इतिहास के एक काल-विशेष से भी संबंध रखती है जो समय की एक विचारणीय अवस्था तक विस्तीर्ण तो होती है, परन्तु निश्चित रूप से प्रमुख 'सामाजिक व वैचारिक परिवर्तन' द्वारा पहचाना जाता है।

16.10.4 आदर्शवादी उदारवादी सिद्धांत

आदर्शवादी-उदारवादी सिद्धांत एक नैतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक उथल-पुथल पर ज़ोर देता है, जिसके माध्यम से लोगों का कोई समूह अपने अस्तित्व हेतु एक नया आधार स्थापित करने का प्रयास करता है। यदि ऐसा है, तो कोई क्रांति महज एक राजनीतिक प्रक्रिया नहीं होती, वरन् मानवीय संभाव्यता प्रकटन का एक हिस्सा होती है। एक उच्च नैतिक ध्येय की ओर दिशा-निर्देशित एक प्रमुख ऐतिहासिक महत्त्ववाली घटना इस व्याख्या के अनुसार एक क्रांति होती है।

इस प्रकार के अभिविन्यास (orientation) को हैगेल की ओर से प्रभावशाली अभिव्यक्ति मिली है। उनके अनुसार, यही वो 'कारण' है जो क्रम-विकास में एक निर्णायक भूमिका निभाता है। प्रयोजन एक पक्ष होता है, उसमें एक विवाद का तत्त्व पनपता है, जिसे उसका 'प्रतिपक्ष' कहा जा सकता है। इन दोनों के बीच संघर्ष 'सपक्ष' के उद्‌गमन की ओर प्रवृत्त करता है, जिसमें पक्ष और प्रतिपक्ष दोनों का मिश्रण होता है, तथा विकास की एक उच्च अवस्था को दर्शाता है - एक ऐसी अवस्था जो एक अन्य उच्च अवस्था की ओर प्रवृत्त करेगी और इस प्रकार, परिवर्तन प्रक्रिया चलती रहेगी। कोई क्रांति, इसी कारण, द्वन्द्व-न्याय कानूनों की संक्रिया के कारण ही होती है, जिसमें निर्णायक भूमिका उत्साह प्रवणता (साहस) की होती है। इस प्रकार, यह उस प्रक्रिया के लिए कुछ खास बन जाता है जिसमें आदर्शरूप से युक्तियुक्त वास्तविक बन सकता है।

क्रांतिबोध संबंधी आदर्शवादी के साथ उदारवादी व्याख्या एम.एन.रॉय के राजनीति-दर्शन में देखी जा सकती है, जिन्होंने कहा कि क्रांति का अर्थ है मनुष्य में आज़ादी की ललक पैदा करना। गोया कि क्रांति मानव स्वभाव पर आधारित है और हिंसा जैसी किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं होती। इसका मतलब है कि स्वतंत्रता और समानता के आधार पर समाज को पुनर्संगठित करने की आवश्यकता बनी रहती है।

आदर्शवादी-उदारवादी सिद्धांत की आलोचना

इस सिद्धांत की इस आधार पर आलोचना की जाती है कि यह इतना दुर्बोध है कि एक औसत बुद्धि वाले व्यक्ति की समझ से बाहर है। विशुद्ध रूप से दार्शनिक व्याख्या क्रांति के विषय को हकीकत की दुनिया से दूर ले जाती है। क्रांति दरअसल, एक महत्त्वपूर्ण घटना है जो सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक विकास के प्रतिमान को बदल देती है। इस अर्थ में यह एक निर्दोषतः व्यावहारिक कार्य है। यह एक आनुभाविक अध्ययन हेतु आह्‌वान करता है। क्रांति का मूल्यरहित अध्ययन, तथापि, एक तार्किक असंभाव्यता है।

बोध प्रश्न 5

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलायें।

1) क्रांति के उदारवादी सिद्धांत की किस आधार पर आलोचना की जाती है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) मार्क्सवादी जन क्रांति के प्रश्न तक कैसे पहुँचते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

16.11 नवीन सामाजिक विज्ञान साहित्य में का सिद्धांतिकरण क्रांति

क्रांति, जो सामाजिक विज्ञान में मुख्य अवधारणाओं में से एक रही है, ने हाल के वर्षों में विद्वानों व शिक्षकों का ध्यान सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लिया है। ऐसी ही कुछ व्याख्याओं पर नीचे चर्चा की गई है।

16.11.1 तुलनात्मक दृष्टिकोण

तुलनात्मक दृष्टिकोण में सर्वाधिक प्रभावी प्रयोग, जैसा कि सामाजिक क्रांति हेतु प्रयोज्य है, थेडा स्कॉक्पोल कृत *स्टेट्स एण्ड सोशल रिवॅलूशन्स* (1979) में उनकी रचना में है, जो कि फ्रांसीसी, रूसी और चीनी क्रांतियों के एक तुलनात्मक विश्लेषण पर आधारित है। इस दृष्टिकोण को अपनाकर थेडा ने क्रांति विषयक अपने अध्ययनों के पीछे हुए 'सामान्यीकृत्य तर्क' को ढूँढने का प्रयास किया। क्रांति-संबंधी सभी पूर्व व्याख्याओं से उनका दूर भागना इसलिए है, क्योंकि सचेत प्रयोजन संबंधी किसी भी धारणा को वह खारिज करती हैं। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि सामाजिक क्रांतियाँ तो बस होड़ करती ताकतों का ग़ैर-योजनाबद्ध परिणाम होती हैं। कलह में विभिन्न गुट शामिल होते हैं और परिणाम इस बात से निर्धारित होता है कि अन्ततः उनमें से कौन जीतता है। न तो व्यक्तिजन, न ही गुट, यहाँ तक कि वर्ग भी सारी क्रांतियों भर में तर्क और संगति के साथ काम नहीं करते, जिसकी कि पारम्परिक दृष्टिकोणों की अपेक्षा होती है। स्कॉक्पोल की, बहरहाल, माइकल टेलर, मैन्कर ओल्सन व अन्य ऐसे लोगों द्वारा आलोचना की गई है जो स्कॉक्पोल के तर्क को यह कहते हुए चुनौती देते हैं कि क्रांति अनुक्तियुक्त (irrational) है और अपने लेखों के माध्यम से यह दर्शाने का प्रयास करते हैं कि युक्तियुक्त विकल्प सिद्धांत क्रांतिकारी गठबंधन-निर्माण पर प्रयोज्य (applied to) है।

16.11.2 मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

फ्रांसीसी क्रांति के समय से ही लोगों ने इस बात की मनौवैज्ञानिक व्याख्याएँ ढूँढ ली थीं कि क्रांतिकारी जो करते हैं, वह क्यों करते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का अनुसरण करती हुई क्रांति-संबंधी सभी पूर्व व्याख्याएँ, यथा ल बौं (1960), दाँ मार्ते (1920) की, उस जनसाधारण के आभासी निर्नैतिक (apparently immoral) व्यवहार के इर्दगिर्द घूमती हैं, जो अनूठे व असाधारण तरीकों से काम करते हैं, जो कि बदले में, द्रुत और दूरगामी परिवर्तनों की ओर इस प्रकार ले जाते हैं कि सामान्य परिस्थितियाँ असंभव होती हैं। ये सब व्याख्यायें, तथापि, यह मानकर चलती हैं कि किसी क्रांतिकारी स्थिति में हर व्यक्ति एक ही तरीके से व्यवहार करता है और कि क्रांति का एक मनोवैज्ञानिक कारण होता है।

परन्तु फ्रायड के प्रभावाधीन क्रांति-संबंधी आधुनिक मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों ने व्यक्ति की दूसरों के साथ अन्तर्क्रिया पर ध्यान आकृष्ट किया। कुछ उल्लेखनीय प्रकाशन रहे हैं, यथा *दि ॲथोरिटेनियन पर्सनॅलिटी* (एडोर्नो व अन्य 1964), *द रिवॅलूशनरी पर्सनॅलिटी* (वोल्फेन्चर, 1967), अथवा *वाइ मैन रिबैल* (टैड गर, 1970)। टैड गर की पुस्तक, विशेष रूप से, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण में एक उच्च रूप से, औपचारिक प्रयोग है, हालाँकि, इसमें मुख्य रूप से राजनीतिक हिंसा का ही संकेत है। गर द्वारा हिंसा-प्रयोग की दिशा में प्रेरणा एक सामाजिक-मनोवैज्ञानिक अवधारणा में पायी जाती है, जिसे 'सापेक्ष वंचन' (relative deprivation) कहा जाता है, और जिसे उस तनाव को इंगित करने हेतु प्रयोग किया जाता है जो सामूहिक मूल्य संतुष्टि संबंधी ''होना चाहिए'' और ''है'' के बीच एक भेद पैदा करता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की भी कुछ अन्तर्जात सीमाएँ हैं, क्रांति के परिणामों को स्पष्ट करने का प्रयास करते-करते, शायद इसी कारण, गर मनोवैज्ञानिक से सामाजिक की ओर चले जाते हैं।

16.11.3 समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

क्रांतियों की सबसे प्रसिद्ध समाजशास्त्रीय व्याख्यायें प्रकार्यात्मकवादी (functionalist) व्याख्याएँ हैं। इस दृष्टिकोण का मूल आधारवाक्य इस प्रकार है : समाज की स्थिरता उसके नागरिकों की आवश्यकताओं को पूरा करने में लगी सामाजिक व्यवस्था पर निर्भर करती है। यदि वह ऐसा करने में विफल रहती है, तो समाज के मूल्यों पर आधारित सर्वसम्मति, जो सरकार को कार्य करने में समर्थ बनाती है, खो जाती है, और सर्वसम्मति की विफलता के साथ ही वर्तमान व्यवस्था के व्यापक परित्यजन (rejection) का रास्ता खुल जाता है। इस दृष्टिकोण को अपनाने वाली कई रचनाएँ उल्लेखनीय रही हैं, यथा *रिवॅलूशन एण्ड द सोशल सिस्टम* (सी. जॉनसन, 1964) *द नैचुरल हिस्ट्री ऑफ रिवॅलूशन* (एल.सी. एडवर्डज़, 1970) आदि। व्याख्या के इन रूपों के साथ समस्या यह है कि वे यह स्पष्ट नहीं करतीं कि कुछ स्थितियों विशेष में क्रांतियाँ क्यों होती हैं, और महत्त्वपूर्ण रूप से, एक अनुकूल परिस्थिति के बावजूद नहीं होतीं।

16.11.4 राजनीतिक दृष्टिकोण

क्रांति के अध्ययन की ओर राजनीतिक दृष्टिकोण मूलतः क्रांति के पीछे हुए तथ्यों को ढूँढने का प्रयास करके क्रांति की व्याख्या करना, क्रांति-प्रक्रिया की व्याख्या करना और क्रांति के परिणामों का विश्लेषण करना है। इस श्रेणी में सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति शायद *फ्रॉम मॅबिलाइज़ेशन टु रिवॅलूशन* (चार्ल्स टिली, 1978)। टिली का खास ज़ोर अन्यत्रभाव प्रक्रिया (alienation) और उस पुनर्संमूहीकरण पर है। जो क्रांति से पूर्व होता है, साथ ही यह ज़ोर क्रांतिकारी परिस्थिति के कारणों पर और क्रांतिकारी परिणामों पर भी है।

16.11.5 दार्शनिक दृष्टिकोण

क्रांति की आधुनिक दार्शनिक व्याख्याओं में हना आरन्त के *ऑन रिवॅलूशन* (1963) का ज़ोर है। आरन्त के अनुसार, क्रांति नवीनतम राजनीतिक दृश्यघटनाओं में से एक दृश्यघटना है। क्रांति आज़ादी की तलाश है और क्रांतिकारी वे होते हैं, जो निरंकुश शासन की सूरत में आज़ादी के लिए लड़ते हैं। आरन्त के अनुसार, आज़ादी एक पार्थक्य-सूचक गुण है; अपने आप में एक अच्छाई है जो कि मानव समाज के पास हासिल करने को उच्चतम उपलब्धि है। क्रांति की समस्या यह है कि उसका दृष्टिकोण ऐसी उपयुक्त संस्थाओं को ढूँढ पाने में विफल रहा है, जिनमें वह स्वयं को व्यक्त कर सके। वह, इसी कारण, इस प्रयोजन का अनुभव करने के प्रयास हेतु व्यावहारिक परिणामों के साथ अपनी बात समाप्त

करती हैं : दलीय सरकार नहीं, जिसको कि वह जनता द्वारा चुने गए एक अभिजात वर्ग द्वारा बनाई गई सरकार मानती हैं, बल्कि आरंभिक गणतंत्रों के स्थानापन्न प्रतिनिधियों द्वारा स्व-शासन।

16.12 क्रांति का मूल्यांकन

अर्थ, प्रकृति और क्रांति विषयक अनेक सिद्धांतों पर चर्चा करने के बाद, उसकी विषयवस्तु स्पष्ट हो जाती है। यथा, क्रांति में अधिकारों का चिरस्थापित भाव लुप्त हो जाता है और कार्यव्यापार की एक नई अवस्था जन्म लेती है। इसमें 'परिवर्तन' का तत्त्व पैदा करने के लिए हिंसा व रक्तपात संबंधी उग्र विचार शामिल किए जाते हैं। इनमें आत्म-पुनर्नवीकरण (self-renewal) की संभावना होती है। यह विफलता अथवा सफलता संबंधी परिवर्तन ला सकता है, जो कि एक राजनीतिक व्यवस्था के समाप्त हो जाने की ओर ध्यान आकर्षित कर सकता है। इस प्रकार, क्रांति का अर्थ हुआ एक ऐसे समाज की असली रुग्णता (illness) को मिटाने के अभिप्राय से निश्चय ही एक दूरगामी परिवर्तन का संयोजन, जो कि एक गतिरोध में पहुँच गया है।

बोध प्रश्न 6

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलायें।

1) क्रांति के विषय में थेडा स्कॉक्पोल के क्या विचार थे?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) क्रांति हेतु मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण पर चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

16.13 सारांश

इस इकाई में हमने राजनीतिक दायित्व व क्रांति तथा राजनीति-दर्शन के महत्त्व व औचित्य संबंधी संपूरक शब्दों की व्याख्या काफ़ी विस्तार के साथ पढ़ी। शुरूआत में हर अन्तर्विवेकशील व्यक्ति कानूनी, धार्मिक, पारम्परिक, नैतिक व अनुमति आधार के कारण राज्य के कानूनों का पालन करता है। कहना चाहिए कि राजनीतिक दायित्व की अवधारणा राजनीतिक वैधता और क्रांति के संबद्ध विषयों के अन्वेषण की ओर प्रवृत्त करती है। हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं कि यदि प्राधिकार विधिसंगत है, तो लोग राज्य का आज्ञापालन करते हैं, अन्यथा वे उसे उखाड़ फेंक सकते हैं। इस प्रकार, क्रांति का मुद्दा जन्म लेता है। यदि कोई क्रांति सफल होती है, तो वह वैधता का एक नया सिद्धांत लागू कर देती है जो कि पूर्व व्यवस्था की 'न्याय संगतता' को हटा देता है। इस प्रकार, दायित्व और क्रांति संबंधी अवधारणाएँ राजनीति-दर्शन की महत्त्वपूर्ण कसौटियाँ हैं।

16.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

कैल्वर्ट, पीटर, *रिवॅलूशन एण्ड काउण्टर-रिवॅलूशन,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, लंदन, 1990

बर्न्स, सी.डी., *द प्रिंसिपल्स ऑफ रिवॅलूशन,* जोर्ज ऐलन एंड अनविन, लंदन, 1920

बार्कर, ई., *प्रिन्सिपल्स ऑफ सोशल एण्ड पॅलिटिकॅल थिअरी,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1967, लंदन

मरियम, चार्ल्स ई., *अ हिस्टॅरी ऑफ पॅलिटिकॅल थिअरीज़ : रिसैन्ट टाइम्स,* सैंट्रल बुक डिपो, 1969, इलाहाबाद

डन, जॉन, *माडर्न रिवॅलूशन : ऐन इण्ट्रोडक्शन टु दि ॲनैलिसिस ऑफ अ पॅलिटिकॅल फिनॉमिनन,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रैस, 1972, लंदन

रे एवं भट्टाचार्य, *पॅलिटिकॅल थिअरी : आइडियाज़ एण्ड इन्स्टीट्यूशन्ज़,* वर्ल्ड प्रैस, कलकत्ता, 1968 (नया संस्करण देखें)

सिंह, रणधीर, *रीज़न, रिवॅलूशन एण्ड पॅलिटिकॅल थिअरी,* पीपल'ज़ पब्लिशिंग हाउस, 1976, दिल्ली

16.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें भाग 16.1 - 16.4

बोध प्रश्न 2

1) देखें उपभाग 16.5.1

2) देखें उपभाग 16.5.2

बोध प्रश्न 3

1) देखें उपभाग 16.5.4

2) देखें उपभाग 16.5.5

बोध प्रश्न 4

1) देखें भाग 16.7 - 16.8

2) देखें भाग 16.8

बोध प्रश्न 5

1) देखें उपभाग 16.10.1

2) देखें उपभाग 16.10.2

बोध प्रश्न 6

1) देखें उपभाग 16.11.1

2) देखें उपभाग 16.11.2